National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 98-99

सूर साहित्य में काव्य सौंदर्य

डॉ0 जयराम त्रिपाठी

सहा0 प्रोफेसर (हिन्दी), हेमवती नंदन बहु0 राज0 स्नातको0 महा0 नैनी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

वात्सल्य एवं श्रृंगार के सम्राट महाकवि सूरदास ने कृष्ण को आराध्य एवं ईवश्र मानते हुए अपने सूरसागर में काव्य सौंदर्य का वर्णन कुछ इस महत् रुप में किया है कि पाठक आलोचक उसकी रस की मात्रा का आकलन करने में अपने आप को असमर्थ पाता है। सूरदास ने कृष्ण को ईश्वरीय गुणों से युक्त मानते हुए भी उनका चित्रण एक सामान्य गृहस्थ के यहाँ पलने वाले बालक की तरह किया है। वे नंद के लालन–पालन के साथ–साथ जन सामान्य की तरह जीवन के सभी छोटे–बड़े कार्य स्वयं करते चलते हैं। सूरसागर में हम यह पाते हैं कि राजा और प्रजा के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं है। सूर के काव्य में मुख्य रुप से तीन रसों का प्रतिपादन हुआ है शांत रस के अंतरगत भक्ति का, श्रृंगार का और वत्सल का। सूरदास के सभी पद गेय हैं क्योंकि इनकी रचना गाने के लिए ही की गई थी।

मूल शब्द: श्रृंगार, वात्सल्य, भक्ति और सूरदास

प्रस्तावना

अष्टछाप के कवियों में सर्वश्रेष्ठ महाकवि सूरदास ने अष्टछाप की स्थापना के अनुरूप गीतों को संगीत में आबद्ध किया था। अष्टछाप के सभी सन्त प्रमुख कीर्तनकार थे। संगीत में गायन एवं वादन दोनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सूरदास के संगीत पक्ष पर विचार करते हुए डॉ0 आशालता ने लिखा है ''अष्टछाप के सभी संत शिक्षित थे। उनको काव्यशास्त्र एवं संगीत शास्त्र का विधिवत् ज्ञान था। जहाँ तक गायन शैली का संबंध है, अष्टछाप के सभी संत कुछ भारतीय–पद्धति के समर्थक थे। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के उद्धरणों से भी यह प्रमाणित है कि वे सब ध्रुपद शैली के गायक थे''[1]

सूर भक्त थे और भक्ति भावना का उत्कर्ष उनके काव्य की आत्मा है भक्ति की भावना की पुष्टि के लिए उन्होनें माधुर्य और वात्सल्य भाव की काव्य रचना की है जिसमें हमें श्रृंगार और वत्सल रस के दर्शन होते चलते हैं। भक्ति भावना में दैन्य भाव का स्थान बड़ा श्रेष्ठ माना जाता है, भक्त यह मानता है कि उसकी दीनता से द्रवित होकर ईश्वर उसे शरण में ले लेंगे।

''मोसों पतित न और गुसाईं।
अवगुन मोपै अजहुँ न छूटत बहुत पच्यौ अब ताईं।
सूर पतित कौं ठौर कहूँ नहिं राखि लेहु सरनाई।''

दैन्य भाव की भक्ति के दर्शन भक्ति काल के समस्त कवियों की कविता में होते हैं। एक तर्क दैन्य भाव के पक्ष में यह भी है कि इसमें मनुष्य अपने अहम् का परित्याग कर देता है जो ईश्वर प्राप्ति में सबसे अधिक बाधक है। माधुर्य भाव की भक्ति में सूरदास ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों रूपों का बड़ा मनोहर वर्णन किया है–

''बालक कृष्ण राधा को देखते ही उन पर आकर्षित होते हैं,
'बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी देखी नाहिं कबहुँ ब्रज खोरी।
.....
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं बातहि भुरी राधिका भोरी।।''

इस प्रकार कृष्ण और राधा का प्रेम उनके प्रथम मिलन यमुना तट से ही प्रारंभ हो जाता है। बाल्यावस्था से उत्पन्न प्रेम युवावस्था तक चलता हुआ परिपक्व हो जाता है।

''धेनु दुहत अति ही रति बाढी।
एक धार दोहनि पहुँचावति, एक धार जहँ प्यारी ठाढी।''

यह नित्य प्रति के व्यवहार से उपजा हुआ प्रेम है जो एकांतिक न होकर जीवन के साथ चलता रहता है। वियोग श्रृंगार का वर्णन भी गोपिकाओं की भावनाओं के रूप में अतीव सुंदर बन पड़ा है। वियोग में शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुएँ भी उनके लिए दुःखदायी हो गई हैं–

''बिनु गुपाल बैरिन भइं कुंजै।
तब वै लता लगति तन शीतल
अब भइँ विषम ज्वाला की पुंजै।''

जो लताएँ उनको सुख प्रदान करती दी वे अब उन्हें विरह में आग की लपटों की भाँति जला रही हैं। आचार्य शुक्ल ने सूर के श्रृंगार वर्णन को देखकर लिखा है। ''कालिंदी के कूल पर शरद की चाँदनी में होने वाले रास की शोभा का क्या कहना है, जिसे देखने के लिए सारे देवता आकर इकट्ठे हो जाते थे। सूर ने एक न्यारे प्रेमलोक की आनंद छटा अपने बंद नेत्रों से देखी है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों का जो विरह सागर उमड़ा है उसमें मग्न होने पर तो पाठकों को वार पार भी नहीं मिलता। वियोग की जितनी भी दशायें हो सकती है सबका समावेश उसके भीतर है।''[2]

सूर को वात्सल्य सम्राट इसीलिए कहा जाता है कि क्योंकि बाल मनोभावों के एक –एक रुप का चित्रण उन्होंने जिस जीवंतता के साथ किया है वैसा संसार का अन्य कोई भी कवि नहीं कर सका है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचना में लिखा है। ''इन पंक्तियों का लेखक संसार की बात तो नहीं जानना–वह बहुत बड़ा है– पर इस बात में तो उसे भी संदेह ही है कि भारतवर्ष–उत्तर भारतवर्ष के किसी वैष्णव कवि ने इतनी सफलता से इस पूर्णता के साथ बाल लीला का चित्रण किया होगा।''[3]

''यशोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोई कछु गावै।''

अब कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे हैं–

''किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आंगन बिम्ब पकरिबे धावत।''

थोड़ा और बड़े होने पर कृष्ण माखन चोरी करते हैं और–

''मैया मोरी मैं नहिं माखन खायों।''

के तर्कों से बचना भी चाहते हैं। सूर जितने कुशल बाल मन के चित्रण में हैं उससे अधिक सिद्धहस्त ममतामयी माँ के हृदय के वर्णन में भी हैं। संयोग के पश्चात वियोग वात्सल्य का चित्रण भी अत्यंत मार्मिक है। यशोदा को यह विश्वास है कि जितना अधिक ख्याल वो कृष्ण का रख सकती हैं उतना कोई और नहीं–यहाँ तक कि सगी माँ देवकी भी नहीं, वह संदेश भेजती हैं–

''संदेशों देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की दया करत ही रहियो।
तुम तो टेव जानतिहि ह्वै हौ, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहिं माखन रोटी भावै।''

श्रृंगार और वात्सल्य के अतिरिक्त भी सभी रसों का वर्णन सूर के द्वारा किया गया है। सूर की भाषा ब्रज की बोल चाल की चलती हुई सर्वग्राह्य भाषा है। यह भाषा माधुर्य और स्वाभाविकता लिये हुए है। अन्य भाषाओं के वे शब्द जो हिन्दी के साथ घुल मिल गए हैं उनसे सूर ने परहेज न करके अपनी रचनाओं में उनका प्रयोग किया है। उनकी भाषा लोकोक्ति और मुहावरों से भी युक्त है। सूर ने अपना कथानक श्रीमद् भावगत पुराण से ग्रहण किया था इस संबंध में ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है।

''तीन दिन तक गऊघाट पर रहकर महाप्रभु वल्लभ ने सूरदास और उनके सेवकों को श्रीमद्भावगत की अपनी सुबोधिनी टीका का उपदेश दिया और पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनाया, जिससे सूरदास को संपूर्ण भागवत स्पष्ट हो गई और उसी के अनुसार पद रचने का उन्होनें संकल्प ले लिया।''[4]

श्रीमद्भावगत में वर्णित कृष्ण के कथानक के आधार पर रचना करते हुए सूर ने नए नए प्रंसगों की उद्भावना से काव्य को अनुप्राणित कर दिया। ''सूर न तो कबीर की भाँति घुमक्कड़ थे और न उन्होनें तुलसी के समान दो भाषाओं का प्रयोग किया, इस दृष्टि से वह एक भाषा निष्ठ थे।''[5]

सूरदास काव्य संगीत की राग रागिनियों में आबद्ध है अतः हम उनकी शैली को गीतिकाव्य शैली कहलाते हैं। सूर ने हिन्दी साहित्य में प्रचलित सभी अलंकारों का वर्णन किया है। गीतिकाव्य में प्रयुक्त होने वाले तत्कालीन मुक्तक छंदो को भी उन्होनें प्रयोग कर एक उच्चता प्रदान की है। हम श्रृंगार और भक्ति को छोड़ भी दें तो कृष्ण भक्ति और वत्सल रस वर्णन में सूर का स्थान विश्व में सर्वोच्च है शिल्प और कथ्य का मणिकांचन संयोग जिस प्रकार सूर के काव्य में दृष्टिगोचर होता है वह प्रायः नहीं प्राप्त होता। हिन्दी साहित्य में महाकवि सूर का यश निश्चय ही सूर्य की तरह प्रकाश मान है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 आशालता प्रसाद : सूरकाव्य और संगीत तत्व (कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर–1980), पृष्ठ–12
2. आचार्य रामचंद्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास (नागरी प्रचारिणी सभा काशी–1999), पृष्ठ–93
3. हजारी प्रसाद द्विवेदीः सूर साहित्य (राजकमल प्रकाशन–2003), पृष्ठ–120
4. ब्रजेश्वर वर्माः सूरदास (नेशनल बुक ट्रस्ट–इंडिया–1990), पृष्ठ–24
5. हरवंशलाल शर्माः सूरदास (राधा कृष्ण प्रकाशन–1998), पृष्ठ–225